Online at: https://researchtrendsjournal.com
Indexed Journal

ISSN No: 2584-282X
Peer Reviewed Journal

INTERNATIONAL JOURNAL OF TRENDS IN EMERGING RESEARCH AND DEVELOPMENT

Volume 3; Issue 2; 2025; Page No. 129-130

Received: 20-01-2025
Accepted: 22-02-2025

भारतीय प्रगतिशील आन्दोलन एवं हाशिए का समाज

डॉ. संगीता

प्रवक्ता, हन्दी राजकीय बालिका इण्टर कॉलेज कड़ा, जनपद कौशाम्बी, उत्तर प्रदेश, भारत

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.18720213

Corresponding Author: डॉ. संगीता

सारांश

नागार्जुन समाजवादी चेतना के प्रमुख कथाकार हैं, जिन्होंने अपने उपन्यासों में स्वतंत्र्योत्तर भारतीय समाज की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक वास्तविकताओं का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने विशेष रूप से हाशिये पर स्थित वर्गों जैसे किसानों, मजदूरों, स्त्रियों और दलितों के शोषण, संघर्ष और जीवन स्थितियों को प्रमुखता से प्रस्तुत किया है। उनके साहित्य में सामंतवाद, सामाजिक विषमता, रूढ़िवादिता और अन्याय का विरोध तथा समानता और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। नागार्जुन का कथा-साहित्य सामाजिक यथार्थ और समाजवादी दृष्टिकोण का सशक्त उदाहरण है, जो समाज परिवर्तन की प्रेरणा प्रदान करता है।

मुख्य शब्दः नागार्जुन, समाजवादी चेतना, हाशिये का समाज, सामाजिक यथार्थ, वर्ग-संघर्ष, प्रगतिशील साहित्य, शोषण, सामाजिक परिवर्तन

प्रस्तावना

नागार्जुन समाजवादी चेतना के कथाकार है अपने संस्कारों के कारण वे स्वतंत्र्योत्तर भारतीय विकासोन्मुखी चेतना को अपने उपन्यासों के माध्यम से यथार्थ चित्रण करने में सफल हुए हैं। इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य साहित्य के माध्यम सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समानता का समर्थन करना, रूढ़िवादिता, अन्याय, सांमतवाद और साम्राज्यवाद का विरोध करना था।

'हाशिए का समाज' का तात्पर्य उन लोगों या समुदायों के समूह से है जिन्हे ऐतिहासिक रूप से, या सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक गतिविधियों से अलग या पीछे छोड़ दिया गया। उनके पास सही इतिहास दृष्टि और उनके परिप्रेक्ष्य में जन्म लेने वाली मौजूदा जिन्दगी की सही सामाजिक सोच है। समकालीन जीवन बोध के नाते ही वे अभिशप्त मनुष्यता को चित्रित करते हुए भी और उसके संस्कार-जर्जर तथा परम्परा बोजिल जीवन को उभारते हुए भी उसके भविष्य के बारे में निराश नहीं होते। "सामाजिक जीवन की विसंगतियों को उभारते हुए उनके बीच से नई-चेता का फूटते हुए दिखाते हैं। साधारणजन की व्यथा पर जहां नागार्जुन भारतीय संवेदना का सारा ताप लेकर हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं, वही मानवीय शोषण की जिम्मेदार ताकतों के खिलाफ उनकी लेखनी बज्र बनकर टूटती है।"[1]

नागार्जुन ने बिहार के मिथिलांचल को अपने उपन्यासों का कथा-क्षेत्र बनाया है। "जहाँ किसानों का शोषण है- संघर्ष का सामाजिक जीवन में गरीबी, भुखमरी, विषाद, उत्पीड़न, अनमेल विवाह, उपेक्षा, अत्याचार अमानवीयता, विधवा-विवाह तथा अन्याय समस्याएँ और विसंगतियां विद्यमान है।"[2] नागार्जुन सामान्यजन की मुक्ति के लिए वर्ग-संघर्ष का आह्वान करते है। यह उनका समाजवादी बोध हैं जिसमें वे स्वतंत्र और शोषण-विहीन ग्राम समाज की संरचना का स्वप्न देखते हैं। उनके उपन्यासों में वर्गीय-संघर्ष का क्रमिक विकास हुआ है। डॉ. इन्द्रनाथ मदान के अनुसार- "नागार्जुन ही शायद अकेले उपन्यासकार है, जिन्होंने समाजवाद बोध को एवं अनायास रूप में आत्मसात किया है। यह बोध उनके पोर-पोर में तथा रंग-रंग से निःसृत है।"[3] उनके उपन्यासों में कोरे सिद्धान्त की अभिव्यक्ति ही नहीं है, अपितु व्यावहारिकता भी है। जिनका विश्लेषण आगे के शीर्षकों के अन्तर्गत किया जाएगा। प्रेमचन्द को पहले-पहल साहित्य को सामाजिक यथार्थवादी परम्परा का सूत्रपात किया था। नागार्जुन ने प्रेमचन्द के परम्परा को आत्मसात् करके उसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह सही है कि प्रेमचन्द की उपन्यासों की भाँति नागार्जुन के उपन्यासों का चित्रपट बहुत व्यापक नहीं है किन्तु "प्रेमचन्द की विसंगतियों को कथाकार हैं

जिन्होंने अपनी कृतियों में ग्रामीण-जीवन की विसंगतियों को अत्यन्त विषदता से अंकित किया है। जितनी गहराई में जाकर उनकी दृष्टि ग्रामीण जीवन के यथार्थ की मिथिला की हरी भरी भूमि पर चलने वाले वर्ग-संघर्ष, को सतह पर उतारती हुई वर्ग विषमता को मूर्त करती है, उसका समसायमिक कृतियाँ में अभाव सा है।"[4] साहित्य में सामाजिक यथार्थ प्रगतिशील साहित्य की देन है। आरम्भ से ही नागार्जुन प्रगतिशील चेतना से जुड़े होने के कारण साहित्य की तात्कालीन प्रगति-विरोध प्रवृत्ति मनोविश्लेषणवाद से अपने आपको बचाए रखा है। डॉ. नामवर सिंह की मान्यता है कि — "कथाकारों के प्रगतिवादी दृष्टिकोष ने सामाजिक यथार्थ को दो खतरों से बचाने का प्रयत्न किया है। एक खतरा तो मनोविश्लेषणवाद की ओर से है जिसमें शेखर या भुवन जैसे अंहवादी और असाधारण पात्रों की सृष्टि की जाती है। अथवा इलाचंद जोशी के सेक्स-ग्रस्त अद्‌भुत नायकों का निर्माण होता है। इन दोनों प्रकार की असाधारणताओं से उबारकर प्रगतिवाद ने साधारण पात्रों के निर्माण का गुर बताया।"[5] अतः प्रगतिशील दृष्टिकोण साहित्यकार को व्यक्तिवादी और मनोविश्लेषणवादी प्रवृत्तियों से बचाए रखता है और उसे समाजोन्मुख बनाता है। समाजोन्मुख होना साहित्यकार का पहला दायित्व है। साहित्य और समाज में गहरा सम्बन्ध होता है। डॉ. नामवर सिंह ने साहित्य का निर्माण में लेखक के व्यक्तित्व को बीच की कड़ी कहा जाता है। "लेखक और साहित्य परम्परा एक दूसरे को इस तरह प्रभावित करते हैं इनमें से प्रत्येक क्रमशः परिवर्तित और विकसित होता रहता है। समाज से लेखक, लेखक से साहित्य और साहित्य से पुनः समाज।"[6] नागार्जुन की समाज से गहरी संपृक्ति है। वे भी सामाजिक दायित्व से सर्वथा मुक्त नहीं है। सामाजिक पक्षधरता चेतना से सम्पन्न है। समाजवाद में उनकी दृढ़ आस्था और विश्वास है। इसलिए वे सामाजिक समस्याओं के प्रति समाजवादी, यथार्थवादी, दृष्टिकोण अपनाते हैं। नागार्जुन ने मिथिलांचल की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, समस्याओं कुरीतियों, अन्य विश्वासों, असंगतियों का गहराई से अध्ययन किया है और युगानुरुप समाधान भी प्रस्तुत किए है। उन्होंने किसान-मजदूरों पर जमींदारों के अत्याचार, शोषण तथा सदियों से उपेक्षित-पीड़ित शोषित नारी, उच्च जाति के वाह्याडंबर, कर्मकाण्ड और झूठी शान-शौकत, रूढ़िवादी मान्यताओं के पक्षधर ब्रह्मणों के खोखली मान्यताओं और नैतिकताओं पर तीखे प्रहार किए हैं। समाजवाद और क्रान्ति पुनर्निमाण और नयी सामाजिक व्यवस्था आदि बातों को वह किताबों की दुनियां से निकाल कर अपने उस विशाल उपेक्षित भू-भाग से जोड़ सके जो किसी भी रचना की जड़ो के लिए आवश्यक कुराक खाद-पानी और हवा की तरह जरूरी ही नहीं है अपितु जो रचना धार्मिता की मूलभूत और एकमात्र शर्त है। "जन-बनिहार, कुली-मजूर, बनिया-खवास, गाँव की विधवाएं और दूसरी सताई जाती रही स्त्रियां, धर्म के नाम पर पलने वाली धूर्तताएं और पाखण्ड इन सब तानों-बानों से नागार्जुन के कथा साहित्य का विशाल कैनवास तैयार होता है। उनका सम्पूर्ण साहित्य उन अत्यन्त साधारण लोगों का साहित्य है जो अपनी मेहनत निष्ठा और ईमानदारी के बावजूद एक घृणित और नरकीय जीवन जीने के लिए अभिशप्त है।"[7]

भारत का ग्रामीण समाज आज भी अत्यन्त पिछड़ा है। अनेक सामाजिक समस्याएँ है। विधवा-विवाह, अनमेल-विवाह, वेश्यावृत्ति, बहुपत्नी-प्रथा। नारी के क्रय-विक्रय की समस्याएँ, सामन्ती समाज की समस्याएँ है जो समाज में जड़ता और गतिरोध पैदा करती हैं। नागार्जुन यथार्थवादी ढंग से समाधान खोजने का श्लाध्य प्रयास करते हैं। उनका मानना है कि सामन्ती अवरोधों को समाप्त किये बिना भारत की जनवादी क्रान्ति सम्पन्न नहीं होगीं। नागार्जुन यह भी मानते हैं कि "सेवा-समिति, विधवा आश्रम, अनाथालय, महिला हितकारिणी-सभा आदि सैकड़ो संस्थाएं पुरानी पड़ गयी हैं। इनमें जो संस्थाएं जिन्दा है उन्हें भी गुटबाज लोग गीदों की तरह नोंच-नोंच कर खा रहे हैं।"[8] इन संस्थाओं से और न ही सुधारवादी रास्ते से इन सामाजिक समस्याओं का समाधान हो सकता है। "क्योंकि हमारा आर्य-समाज, देव समाज, बंगालियों का ब्रह्म समाज, बम्बई वालों का प्रार्थना समाज.... ये संगठन भी कमजोर हो गये है।"[9] उनके लिए तो पूरे ढ़ाँचे को ही बदलना पड़ेगा। भारतीय प्रगतिशील आन्दोलन ने समाज के हाशिये पर ढकेले गए समुदायों के लिए 'आवाज' का काम किया। इसने सामंती ढ़ाँचे को तोड़कर सामाजिक न्याय, समानता और मानवाधिकारों की स्थापना पर जोर दिया। आज भी, दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य और नारीवादी लेखन प्रगतिशील आन्दोलन की उसी विरासत को आगे बढ़ा रहे हैं, ताकि हाशिये का समाज मुख्याधार में शामिल हो सके।

सन्दर्भ

1. प्रेमचन्द :- विरासत का सवाल - शिवकुमार मिश्र, पृ. 124
2. उपन्यास और समाज - गोपाल कृष्ण शर्मा, पृ. 102
3. हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन - इन्द्रनाथ मदान, पृ. 406
4. प्रगति - शिवकुमार मिश्र, पृ. 79-80
5. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह, पृ. 110
6. इतिहास और आलोचना - नामबर सिंह, पृ. 38
7. आलोचना : जुलाई-सितम्बर, 1972 - मधुरेश, पृ. 50-51
8. कुम्भीपाक, पृ. 115
9. कुम्भीपाक, पृ. 115

Creative Commons (CC) License
This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.